प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण

केवलानंद काण्डपाल*

भाषा मात्र नियमों द्वारा नियंत्रित संप्रेषण का माध्यम भर नहीं है, बल्कि यह एक परिघटना है जो एक बड़े स्तर पर हमारी सोच, सत्ता और समता के संदर्भ में हमारे सामाजिक संबंधों को निर्मित करती है। जिस तेज़ी से एक सामान्य शिशु महज़ तीन साल की उम्र में ही केवल एक भाषा में नहीं, बल्कि एक से अधिक भाषाओं में भाषिक क्षमता हासिल कर लेता है, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हम संभवत: अपने साथ भाषा क्षमता लिए ही जन्म लेते हैं। सभी भाषिक विकास सामाजिक-सांस्कृतिक माध्यम से होते हैं और इस क्रम में प्रत्येक बच्चा बहुविध अभिव्यक्तियों के साथ कई तरह की सामाजिक अंत:क्रियाओं के लिए तैयार होता जाता है। भारत जैसे देश में, जहाँ अधिकांश बच्चे बहुभाषिक संभावना के साथ स्कूल आते हैं, लेकिन स्कूल आना धीरे-धीरे छोड़ देते हैं, इसके कई कारण हैं, लेकिन इनमें से एक कारण है स्कूल की भाषा, जो उन्हें उनके घर एवं पड़ोस की भाषा से खुद को जोड़ नहीं पाती। अधिकांश बच्चे स्कूल पढ़ने और लिखने की शून्य क्षमता के साथ स्कूल छोड़ते हैं, यहाँ तक कि अपनी भाषा में भी। कुछ अन्य कारण, जो इस न्यूनतम स्तर तक की भाषा क्षमता तक को हासिल नहीं कर पाने के लिए ज़िम्मेदार हैं, वे हैं भाषा की संरचना के साथ-साथ भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की समझ का अभाव, घर एवं पड़ोस में बोली जाने वाली भाषा के संज्ञानात्मक विकास में योगदान की बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो पाना और इस बात को समझने में असफ़ल होना कि संज्ञान के स्तर पर विकसित भाषा क्षमता अन्य भाषाओं में आसानी से अनूदित होती रहती है। यह निरंतर स्पष्ट हो रहा है कि जैव विविधता के रूप में हमारी जीवंतता के लिए भाषिक विविधता बहुत महत्वपूर्ण है। बच्चे को मातृभाषा में ही शिक्षा प्रदान की जाए और शिक्षकों को कक्षा में बहुभाषी वातावरण का महत्तम उपयोग कर सकने की क्षमता प्रदान की जाए। बहुभाषिकता ज़्यादा संज्ञानात्मक लचीलेपन एवं सामाजिक सहिष्णुता को भी जन्म देती है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत आलेख में प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के शिक्षणशास्त्रीय पहलुओं पर विमर्श का प्रयास किया गया है।

* ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बागेश्वर, उत्तराखंड 263642

Chapter 7.indd 59 8/8/2017 3:47:59 PM

बच्चे का समाजीकरण एवं वयस्क जीवन की तैयारी सभी समाजों में अबाध रूप से जारी रहती है। इस क्रम में बच्चा अपने परिवार में व आस-पास के वयस्कों से सूचना, निर्देश, आदेश एवं संकेत जिस रूप से प्राप्त करता है, उसमें भाषा की अहम भूमिका होती है। यह कहना भी इतना ही सही है कि समाजीकरण के इस क्रम में बच्चा अपने परिवेश की 'भाषा-बोली'[1] के माध्यम से प्राप्त सूचना, निर्देश, आदेश एवं संकेतों से अर्थ निर्मित करता है और यह निर्मित भाषा में ही होती है। लगभग तीन-चार वर्ष की उम्र में बच्चा इस समझ को अपनी परिवेशीय भाषा-बोली में कमोवेश भाषायी कुशलता के साथ अभिव्यक्त भी कर लेता है। व्यवहार में ऐसा क्यों होता है कि अपनी भाषा-बोली में कुशल बच्चा, विद्यालय आकर उस तरह से मुखर नहीं रह पाता जैसा कि वह विद्यालय आने से पूर्व था। भाषा सीखने की मज़बूत नींव, अन्य विषयों को सीखने में एक बहुमूल्य निवेश है। भाषा शिक्षण केवल भाषा की कक्षा तक सीमित नहीं होता। प्राथमिक स्तर पर गणित एवं परिवेशीय अध्ययन की कक्षाएँ भी एक तरह से भाषा की कक्षा होती हैं। "किसी विषय को सीखने का मतलब है उसकी अवधारणाओं को सीखना, उसकी शब्दावली को सीखना, चर्चा करना और उसके बारे में लिखना।"[2] बच्चे के व्यक्तित्व और उसकी क्षमताओं को आकार देने में भाषा एक विशेष भूमिका निभाती है। प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के संदर्भ में इसके गंभीर शैक्षणिक निहितार्थ हैं।

बहुचर्चित पुस्तक *बच्चे असफ़ल कैसे होते हैं* में जॉन होल्ट ने एक महत्वपूर्ण विमर्श बिंदु की ओर संकेत किया है, "बच्चे स्कूलों में जिज्ञासा से भरे आते हैं, पर कुछ ही सालों में उनकी मुखर जिज्ञासा की मौत हो जाती है या कम से कम वह मौन तो हो ही जाती है।"[3] यह हमारी प्राथमिक कक्षाओं के भाषा शिक्षण के संदर्भ में बहुत सटीक बैठता है।

"प्रसिद्ध विचारक प्लूटो ने दो सहस्त्राब्दि पहले कहा था कि बच्चा दरअसल बड़ों के बीच में एक विदेशी की तरह होता है। जैसे आप किसी विदेशी से, जिसकी भाषा आपको न आती हो, बात करते हैं तो आपको मालूम होता है कि मेरी कई बातें वो ठीक से समझेगा, कई नहीं समझेगा या गलत समझ जायेगा और जब वो कुछ बोलता है, अपनी भाषा में बोलता है और उसको हमारी भाषा नहीं आती तो हम भी उसकी बात पूरी नहीं समझ पाते, कुछ समझते हैं, कुछ नहीं समझते हैं और इस तरीके से जो आदान-प्रदान होता है, वह अधूरा ही रह जाता है।"[4]

बच्चा जब पाँच वर्ष की उम्र में विद्यालय आता है तो उसकी भाषा-बोली के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संदर्भ होते हैं। चूँकि बच्चे की भाषा का विकास इन संदर्भों के वृहद परिप्रेक्ष्य में होता है, तो उसकी उत्सुकता एवं जिज्ञासा के क्षेत्र भी वही रहते हैं। बच्चा विद्यालय में प्रथम भाषा (हिंदी भाषी क्षेत्र में प्राय: यह हिंदी ही होती है।) सीखना प्रारंभ करता है। इस प्रक्रिया में बच्चे के भाषायी संदर्भों की जाने-अनजाने उपेक्षा की जाती है, विद्यालय की प्रथम

भाषा सीखना बच्चे के लिए सहज प्रक्रिया नहीं रह जाती, अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो उसके संदर्भों से जुड़ी न होने के कारण बच्चे के लिए कोई अर्थ निर्मित करने में मददगार नहीं होती है।

वर्तमान में प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के संदर्भ में जो परिदृश्य उभर कर सामने आता है और जो वास्तव में होना चाहिए, उसे निम्नांकित रेखाचित्र से सहज ही समझा जा सकता है—

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण

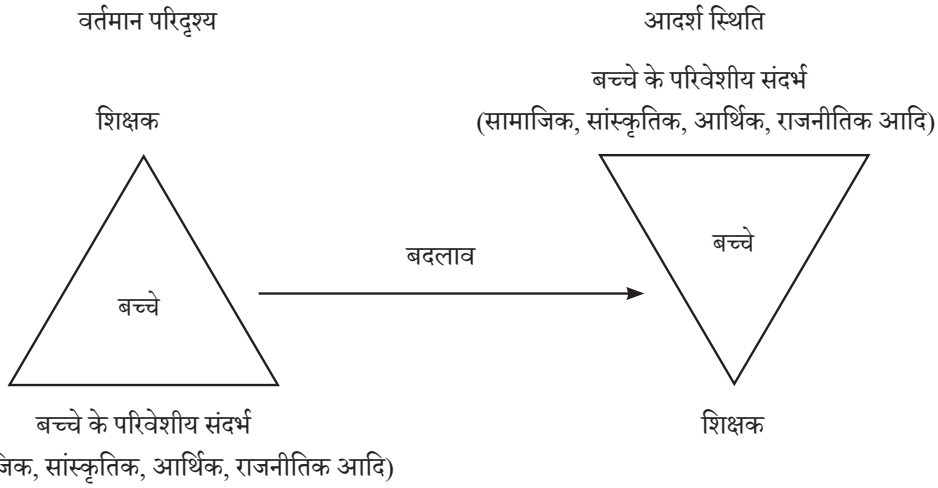

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण का जो वर्तमान परिदृश्य नज़र आता है, उसमें भाषा शिक्षण में अध्यापक एवं पाठ्यपुस्तकें मुख्य स्त्रोत के रूप में दिखलाई पड़ते हैं, बच्चे के परिवेशीय संदर्भों का संज्ञान प्राय: नहीं लिया जाता। बच्चे की भाषा उसके विशेष सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों में निर्मित होती है। "याद रखें कि भाषाएँ सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से बनती हैं।"[5] इसे एक उदाहरण से स्पष्ट करना उचित होगा। यदि किसी बच्चे के परिवेश की आर्थिकी कृषि पर निर्भर है तो उसकी भाषा, बोलचाल में ऐसे शब्दों की बहुतायत होती है जो कृषि कार्य से संबंधित होती है, इसी प्रकार, यदि बच्चे को अपने परिवार, पास-पड़ोस में स्वतंत्रता, समानता एवं भाई-चारे के व्यवहारों के अनुभव प्राप्त होते हैं तो उसकी भाषा कि शब्दावली में इसकी झलक दिखलाई देगी, यदि पितृसत्तात्मक एवं लैंगिक विभेद के अनुभव उसे अपने परिवार एवं परिवेश में प्राप्त होंगे तो विपरीत लिंगी से बातचीत में इसकी झलक दिखलाई पड़ेगी।

"भारतीय परंपरा में भाषा बोलना है (लेखन नहीं), संज्ञान है (महज़ बातचीत का माध्यम नहीं) और एक रचनावादी तंत्र है, मात्र प्रस्तुतीकरण नहीं। बोली गई भाषा की प्रकृति अस्थायी होती है और लिखित भाषा की तुलना में काफी तेजी से बदलती रहती है। इसलिए लिखित व बोली जाने वाली भाषा के बीच के अंतर को देखकर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। यद्यपि

बच्चे जन्मजात भाषिक क्षमता के साथ जन्म लेते हैं तथापि भाषाओं का सीख जाना खास सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संदर्भों में होता है।"[6]

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण में बच्चे के परिवेशीय संदर्भों की उपेक्षा की जाती है (चाहे यह जानबूझकर न किया गया हो।)। बच्चा अपने संदर्भों से कटकर भाषा सीखने का प्रयास करता है और इस क्रम में अर्थ निर्मित करने में कठिनाई महसूस करता है, अन्तत: बच्चे के लिए भाषा सीखना एक चुनौती बन जाती है। इसके बजाय भाषा शिक्षण में बच्चे के परिवेशीय संदर्भ का संज्ञान लेने पर बच्चे के लिए यह प्रक्रिया सहज हो सकती है, इससे बच्चे के लिए अर्थ निर्माण करने में आसानी हो जाती है। बच्चे के लिए भाषा सीखना रुचिपूर्ण हो जाता है। "जो शब्द बच्चे अपने अनुभव से जानते हैं, उनका नाम आते ही पूरा बिम्ब उनके मस्तिष्क में बन जाता है और वे शब्द का अन्य प्रसंगों में भी इस्तेमाल कर पाते हैं।"[7]

इस क्रम में बच्चे की भाषा-बोली (यदि यह विद्यालय की भाषा से भिन्न है) विद्यालय की भाषा तक पहुँचने में एक पुल निर्मिति करती है। "जब हम घर की भाषा और मातृभाषा की बात करते हैं तो इसके अंर्तगत घर की भाषा, कुनबे की भाषा, आस-पड़ोस की भाषा आदि आ जाती है जो बच्चा स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण से ग्रहण कर लेता है।"[8] यहाँ पर बच्चे की मातृभाषा एवं कक्षा की बहुभाषिकता का मुद्दा उभरता है, इसके बारे में इस आलेख में आगे विचार करेंगे। महत्वपूर्ण यह है कि विद्यालय के निर्देश की भाषा एवं बच्चे की अधिगम की भाषा में संगति होनी चाहिए।

चॉमस्की कहते हैं, "बच्चों में भाषा को सीखने की जन्मजात क्षमता होती है। एक तीन साल के बच्चे से किसी भी ऐसे विषय पर अच्छी तरह बातचीत की जा सकती है जो उसके संज्ञानात्मक दायरे के अंदर आता हो। इससे यह पता चलता है कि सामान्यत: एक बच्चा एक सामान्य भाषायी जगत से संपर्क के अतिरिक्त अंतर्निहित भाषायी क्षमता के साथ ही जन्म लेता है"[9] (चॉमस्की 1957, 1965, 1986, 1988, 1993)। इसी क्षमता के कारण बच्चा 4–5 वर्ष की उम्र तक अपने परिवेश की भाषा में सुनने, सुनकर अर्थ ग्रहण करने, बोलने, अर्थपूर्ण बोलने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। शुरुआती दौर की कुछ कठिनाइयों के बाद पाँच वर्ष की उम्र तक इसमें महारत भी हासिल कर लेता है। आश्चर्यजनक है कि यह सब कुछ बच्चे के विद्यालय आने से पूर्व ही घटित हो रहा होता है।

यह जानकारी कि व्यक्ति में एक जन्मजात भाषिक क्षमता होती है, दो शिक्षाशास्त्रीय पहलू सामने रखती है— पर्याप्त अवसर मिले तो बच्चा नयी भाषाओं को भी आसानी से सीखेगा। यद्यपि, बच्चे जन्मजात भाषिक क्षमता के साथ जन्म लेते हैं, तथापि भाषाओं का सीख पाना खासतौर से सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संदर्भों में होता है।

- बच्चे जब बोलते हैं, वह समग्रता में सोचते हुए बोलते हैं। मसलन, जब बच्चा यह कह रहा हो 'उसे घर में रहना अच्छा लगता है', तो घर की अवधारणा, अच्छा लगने की उसकी समझ, अच्छा लगने के कारण, दूसरी जगह अच्छा न लगने की वजह, चाहे अनगढ़ किस्म की क्यों न

हो, बच्चे के मस्तिष्क में ज़रूर होती है। अगर किन्हीं करणों से ऐसा नहीं है तो बच्चा बोल नहीं रहा है, वरन् रटे हुए को दोहरा रहा है।

- हर एक बच्चा, चाहे उसकी भाषा-बोली कुछ भी क्यों न हो, भाषा का इस्तेमाल कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है। बच्चे की नज़र में यह उद्देश्य है अपने आस-पास की दुनिया को जानना-समझना, इस जानने-समझने की प्रक्रिया से प्राप्त अनुभवों को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करना। वस्तुत: अनुभवों को आत्मसात् करने और व्यक्त करने के लिए शब्दों की ज़रूरत होती है, भाषा के माध्यम से यह प्रक्रिया पूर्ण होती है। जब बच्चे का कोई अनुभव पूर्ण हो चुका होता है तो इसके बाद बच्चा उसे साझा करने के लिए उत्सुक होता है और यह उसकी अपनी भाषा के माध्यम से ही होता है।
- कौन-सी बात, किससे, किस प्रकार, और कहाँ कहनी है, यह प्रत्येक बच्चा सीख जाता है, इसके बारे में बच्चे की खास सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समझ होती है और इसका आधार उसके परिवेशीय अनुभव होते हैं।

"जब बच्चे विद्यालय आते हैं तो विद्यालयी प्रक्रिया बच्चे की इन्द्रियों को बांधने का काम करती हैं। उसे कुछ बोलना नहीं है, कुछ महसूस नहीं करना है, जो महसूस कर रहा है, उस अनुभव को साझा नहीं करना है, केवल वही बोलना है, जो अध्यापक चाहे और वही देखना और महसूस करना है जो अध्यापक चाहते हैं कि बच्चे देखें और महसूस करें।"[10] इसी परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के शिक्षणशास्त्रीय विमर्श के कुछ महत्वपूर्ण पहलू उभर कर सामने आते हैं। भाषा शिक्षण की ध्वनि (Phonetic) पद्धति (कभी-कभी इसे वर्ण पद्धति भी कहा जाता है) एवं समग्र पद्धति की विधाओं को लेकर एक लंबा विमर्श रहा है। शिक्षकों में भाषा शिक्षण की समग्र (Holistic) पद्धति के बारे में सैद्धांतिक सहमति होने के बावजूद प्राथमिक कक्षाओं में वर्ण से आरंभ करके, मात्राएँ, सरल शब्द, कठिन शब्द पढ़ने एवं लिखने की प्रवृत्ति विद्यालयों में अभी भी व्याप्त है। बच्चे की भाषा सीखने के यांत्रिक पक्ष पर अत्यधिक ज़ोर देने के कारण जो प्रक्रिया अपनाई जाती है, वह बच्चों में नीरसता, ऊब एवं तनाव पैदा करती है। वर्णों को ठीक आकार में लिखना, उच्चारण करना बच्चे के लिए कोई भाषायी संदर्भ निर्मित नहीं करते, बच्चा इससे कोई अर्थ निर्मित करने में असफ़ल रहता है और आश्चर्यजनक रूप से भाषा विषय में भी बच्चे रटने की यांत्रिक प्रणाली अपनाने लगते हैं।

"बच्चा अपने आप अपने माता-पिता की भाषा सीख लेता है परंतु हम वयस्कों के लिए नई भाषा सीखना बहुत बड़ी भौतिक उपलब्धि होती है। बच्चे को कोई सिखाता नहीं परंतु वह क्रिया, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि का बिल्कुल सही प्रयोग कर लेता है।"

— मारिया मॉन्टेसरी

वस्तुत: वर्ण का कोई अर्थ नहीं होता है केवल निरपेक्ष ध्वनि होती है, जहाँ तक लिखने का प्रश्न है बच्चे के लिए वर्ण एक आकृति मात्र होती है, बहुत बार एकदम जटिल भी। इस तरह से भाषा शिक्षण से

क्या-क्या हानिकारक परिणाम हो सकते हैं, इस पर सटीक राय देने का अधिकार क्षेत्र भाषाविदों का है। यहाँ पर मैं यह ज़रूर उल्लेख करना चाहता हूँ कि विद्यालय अनुश्रवण के दौरान बहुत बार जब बच्चों से कुछ शब्दों को पढ़ने का आग्रह करता हूँ तो बच्चे कुछ इस तरह से शब्दों को पढ़ने का प्रयास करते हैं—

कमल-कबूतर वाला क, मछली वाला म, लट्टू वाला ल, इसी शब्द को उलट-पलट कर कलम, मलक को पढ़ने का आग्रह करने पर पुन: वही प्रक्रिया अपनाते हैं। यद्यपि सभी बच्चे ऐसा नहीं करते, परंतु इस तरह से पढ़ने की कोशिश करने वाले बच्चों की संख्या सारभूत रूप से ज़्यादा होती है। इससे अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं है कि कुछ तो गड़बड़ हो रही है भाषा शिक्षण में।

वस्तुत: प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य पाठ्यपुस्तकों की पढ़ाई करना मात्र नहीं है, वरन् भाषा से जुड़े कौशलों एवं दक्षताओं का विकास करना है। ये कौशल एवं दक्षताएँ हैं— सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना। बच्चों में इन भाषायी कौशलों का विकास एक निर्धारित क्रम में होने की मान्यता है, परंतु इन कौशलों के विकास क्रम के मध्य एक विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती और यह बहुत जटिल काम है। बच्चा सुनने के साथ-साथ बोलना, बोलने के साथ-साथ पढ़ना, सुनने-बोलने-पढ़ने के साथ लिखने का कौशल हासिल करता जाता है। बच्चे के परिवेशीय अनुभव एवं क्षमताओं के आलोक में एक कौशल के साथ दूसरे भाषायी कौशल अर्जन करने की गति में भिन्नता ज़रूर हो सकती है, परंतु भाषा शिक्षाविद् मानते हैं कि एक सामान्य बच्चे में भाषायी कौशल विकास की यह यात्रा सुनने से शुरू होकर पढ़ने-लिखने के भाषायी कौशल तक पहुँचती है।

भाषायी कौशलों के शिक्षणशास्त्रीय पहलुओं पर विचार करने से पूर्व शिक्षक के नज़रिए से भाषा व्यवहार के पक्षों पर विचार कर लेना समीचीन होगा। यह इसलिए भी ज़रूरी हो जाता है कि भाषा व्यवहार को ध्यान में रखते हुए बच्चों में भाषा संबंधी कौशलों/दक्षताओं के विकास के लिए उर्वर अवसर सृजित कर सकें। इससे भाषायी कौशलों की प्रकृति एवं उनके आपसी संबंधों को समझने में आसानी भी होगी। भाषा व्यवहार के दो प्रमुख पक्ष हैं— यांत्रिक और मानसिक। यांत्रिक पक्ष में ध्वनि, लिपि, व्याकरणिक पद्धति मुख्य रूप से आते हैं। मानसिक पक्ष में वाक्य रचना, विषय-वस्तु, वर्ण, शब्द की पहचान, संयोजन, उपयुक्त तरीके का चयन, अनुमान आदि मुख्य रूप से शामिल किए जा सकते हैं। "मानसिक दृष्टि से सुनना और पढ़ना लगभग समान हैं।"[11] दोनों का उद्देश्य अर्थ ग्रहण करना होता है, श्रोता से अपेक्षा की जाती है कि वह सुनी हुई विषय-वस्तु को समझ सके तथा पाठक से उम्मीद की जाती है कि वह पढ़कर अर्थ ग्रहण कर सके। यद्यपि, पढ़ने में यांत्रिक पक्ष भी सक्रिय हो जाता है, पढ़ने के क्रम में लिखे हुए वर्ण, शब्द, शब्द-समूह, विराम चिन्हों हेतु उपयुक्त ध्वनियों का चयन भी करना होता है।

इसी प्रकार, भाषा के बोलने एवं लिखने के कौशलों में संगति दिखलाई देती है। दोनों में वाक्य रचना करने हेतु उपयुक्त वर्ण, शब्द, शब्द-समूहों का चयन एवं संयोजन ज़रूरी होता है। यह मानसिक

पक्ष का महत्वपूर्ण भाग होता है। बोलने के लिए वर्ण, शब्द, शब्द-समूहों हेतु ध्वनियों के चयन की ज़रूरत होती है, इससे भाषा का यांत्रिक पक्ष सक्रिय हो जाता है। वस्तुत: भाषा व्यवहार का यांत्रिक पक्ष जिसमें वर्ण, ध्वनि, लिपि निहित है, भाषा के प्रारूप को रचने में मदद करता है, वहीं मानसिक पक्ष जिसमें ध्वनि एवं शब्द चयन, भाषा-शैली एवं संयोजन, भाषा के रचनात्मक पहलू से संबंधित है। भाषा के व्यवहार पक्ष का यह विश्लेषण भाषायी कौशलों की परस्पर संबंधता एवं संगति के बारे में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि देता है। इसके आलोक में अब भाषा कौशलों के शिक्षणशास्त्रीय पहलुओं पर विचार करना उचित होगा।

सुनना एवं बोलना

शरीर वैज्ञानिकों का निश्चित अभिमत है कि बोलने की क्षमता के विकास के लिए सुनने की क्षमता का विकसित होना ज़रूरी है। ये दोनों कौशल एक-दूसरे से गहन रूप से संबंधित हैं। पाँच वर्ष की उम्र में जब बच्चा विद्यालय में आता है तो सुनने एवं बोलने की विकसित दक्षता के साथ आता है। बहुत संभव है कि बच्चे का यह भाषायी कौशल उसकी परिवेशीय भाषा-बोली के संदर्भ में हो। बच्चा, जो कुछ भी बोला जा रहा है, उसे सुनते हुए अपनी समझ, विचार, स्कीम, अवधारणा बना रहा होता है। बहुत बार संभव है कि सुनी हुई बात को जाँचने-परखने के लिए कुछ पड़ताल, पुष्टि, परीक्षण जैसा भी कुछ कर लेता हो, परंतु इतना निश्चित है कि उसको संबोधित जो भी कहा जाता है, निर्देश दिए जाते हैं, सूचना दी जाती है, उनका ठीक-ठीक अर्थ समझता है अर्थात् वह सुनकर समझता है या समझते हुए सुनता है। बच्चे के परिवेश की भाषाएँ एवं विद्यालय की भाषा में फ़र्क होने पर बच्चे के सुनने एवं बोलने के भाषायी कौशलों के विकास में बाधा पड़ती है। निर्देश की भाषा एवं अधिगम की भाषा का अंतर बच्चे को उलझन में डाल देता है। यहाँ पर मैं एक मज़ेदार अनुभव साझा करना चाहूँगा। एक विद्यालय में अनुश्रवण के दौरान मैंने एक बच्चे से बाहर से एक पत्थर लाने को कहा। दरअसल खिड़की के दरवाज़े के बार-बार बंद होने से रोकने के लिए उसे पत्थर लगाकर रोकने का मेरा मंतव्य था। बच्चा थोड़ी देर में खाली हाथ वापस आ गया। मैं स्वयं बाहर से एक उपयुक्त पत्थर ले आया, बच्चा बड़ी सहजता से बोला यह तो 'ढुंग' है, दरअसल कुमांउनी भाषा-बोली में पत्थर को 'ढुंग' कहा जाता है। मैं कुमांउनी जानता हूँ सो मामला जल्दी ही सुलट गया, परंतु एक बारगी बच्चा तो उलझन में पड़ ही गया था।

विद्यालयी निर्देश की भाषा भिन्न होने पर शिक्षण शास्त्रीय दृष्टि से दो मुद्दे सामने आते हैं, पहला—बच्चे की भाषा-बोली को भाषा शिक्षण में समुचित स्थान देना, दूसरा—कक्षा की बहुभाषिकता को एक समृद्ध संसाधन के रूप में व्यवहृत करना। मुझे लगता है कि बहुभाषिकता के अंर्तगत बच्चे की भाषा-बोली का मुद्दा भी आ जाता है। भाषा के सुनने एवं बोलने के कौशल के विकास के शुरुआती दौर से ही इस पर काम करने की ज़रूरत होती है। बच्चों के सुनने-बोलने के कौशल के समुचित विकास हेतु कक्षा की बहुभाषिकता को एक समृद्ध संसाधन के रूप में उपयोग में लाने की ज़रूरत है। बच्चे की भाषा-बोली

के परिवेशीय संदर्भों का गहनता से विश्लेषण करने की आवश्यकता है। बच्चे से एकदम शुरुआत से ही विद्यालय की भाषा में बोलने का दबाव बच्चों के बोलने के अवसरों को सीमित कर देता है, इसका एक बड़ा नुकसान यह होता है कि बच्चे की परिवेशीय भाषा-बोली से विद्यालय की भाषा के मध्य सेतु निर्माण के अवसर खत्म हो जाते हैं।

इसके लिए बहुत ज़रूरी है कि बच्चों को बोलने के प्रचुर अवसर मिलें, अपने परिवेश के बारे में बातचीत, अवलोकनों पर बातचीत, प्रार्थना सभा, बालसभा, खेलकूद आदि अवसरों पर अपनी भाषा-बोली में बातचीत के अवसर बच्चों को मिलें। शिक्षक की कुशलता है कि वह किस प्रकार से परिवेशीय भाषा-बोली एवं विद्यालय की भाषा में सामंजस्य बिठा ले जाता है। इसके लिए बच्चों को बातचीत के अधिक-से-अधिक अवसर देने की ज़रूरत है, बच्चों को अपने परिवेश के बारे में, स्कूली अनुभवों के बारे में, तस्वीरों/चित्रों पर बातचीत, कहानी एवं कविताएँ सुनाना और उस पर बातचीत, नाटक एवं अभिनय करके उस पर बातचीत, अपने आस-पास की चीज़ों पर गौर करना और उन पर बातचीत, आपस में एवं लोगों से बातचीत आदि ऐसे अनेक अवसर सृजित करने होंगे, जिससे बच्चे के बोलने एवं सुनने के कौशल में परिपक्वता आ जाए।

"बहुभाषिकता-भारत की भाषिक विविधता एक जटिल चुनौती तो पेश करती ही है लेकिन यह कई प्रकार से अवसर भी देती है।"[12] कक्षा की बहुभाषिकता बच्चों की परिवेशीय भाषा-बोली, कई उप-बोलियों से जुड़ी होती है। अत: बच्चे के सुनने-बोलने के भाषायी कौशल की विकास यात्रा बच्चे की अपनी भाषा-बोली से होनी चाहिए, अगले पड़ाव पर विद्यालय की प्रथम भाषा में जाने का लक्ष्य होना चाहिए। बच्चे की भाषा-बोली से हिंदी भाषा (या विद्यालय की प्रथम भाषा) तक की यात्रा में दोनों ओर आवाजाही की छूट देनी होगी। बच्चे अपनी मातृभाषा-बोली से भावनात्मक रूप से मज़बूती से जुड़े हाते हैं। यदि भावों को अभिव्यक्त करना भाषा का एक प्रमुख सरोकार है तो फिर इसकी शुरुआत भी इसी संदर्भ बिंदु से करनी होगी। विद्यालय में बच्चा सुरक्षित (बच्चे को हँसी उड़ाए जाने का भय नहीं है तो) महसूस करता है तो वह अपने घर-परिवेश की भाषा में बोलने में सहजता अनुभव करता है, बातचीत करता है, सुनता है, सुनकर अर्थ ग्रहण करता है। यदि इसी प्रस्थान बिंदु पर बच्चे के प्रयास की उपेक्षा कर दी जाए, तो वह कक्षा में बोलना कम कर देगा और धीरे-धीरे बंद ही कर देगा। इस क्रम में विद्यालय की भाषा को सीख ही लेगा, इसके कोई ठोस साक्ष्य भी नहीं हैं। बहुभाषी कक्षा भाषा के शुरुआती कौशलों (विशेषकर बोलने-सुनने के कौशलों) के विकास हेतु एक समृद्ध संसाधन है। यदि गहनता से विचार करें तो हम मूलत: बहुभाषिक होने के करीब-करीब ही हैं। अपनी बातचीत का प्रत्यास्मरण करके हम महसूस कर सकते हैं कि विभिन्न भाषाओं के शब्दों, वाक्यों को अपनी बोलचाल में शामिल करके हमने अपनी बोलचाल की भाषा को समृद्ध ही किया है। कक्षा की बहुभाषिकता

के बारे में स्पष्ट समझ बच्चे की मातृभाषा-बोली से विद्यालयी भाषा में कब और किस प्रकार आवाजाही करनी है, के बारे में निर्णय लेने में अध्यापक को मदद मिलती है। बच्चे की अपनी भाषा-बोली के शब्द कक्षा की भाषा को समृद्ध बनाते हैं, बच्चे में अपनी भाषा-बोली के प्रति हीनता का भाव नहीं जाता है। बच्चे के लिए अपनी भाषा-बोली में अर्थग्रहण करने की सहजता रहती है। कक्षा में बहुभाषिकता बच्चे के परिवेशीय संदर्भों (सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि) को समझने में बहुत कारगर है, कक्षा की विविधता के प्रति सम्मान एवं बच्चों की विविध आवश्यकता को संबोधित करने का मूल्य विकसित करने में मददगार होती है।

"बहुभाषिकता जो बच्चे की अस्मिता का निर्माण करती है और जो भारत में भाषा परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण है, उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा इसे लक्ष्य के रूप में रखना, रचनात्मक भाषा शिक्षक का कार्य है। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है, बल्कि इससे यह भी सुनिश्चित हो सकता है कि हर बच्चा स्वीकार्य एवं संरक्षित महसूस करे और भाषा की पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पीछे न छोड़ा जाए।"[13]

पढ़ना एवं लिखना— मनो-शिक्षाविद् विलियम हल का मानना है कि यदि हम बच्चों को बोलना सिखाते तो वे शायद कभी बोलना नहीं सीखते। बच्चों को पढ़ना सिखाने के संदर्भ में यह बात काफ़ी हद तक सही भी लगती है। विद्यालयों में बच्चों के पढ़ने की चिंताजनक स्थिति को देखकर महसूस होता है कि यदि वयस्कों की दखलंदाज़ी नहीं होती तो शायद पढ़ना बच्चों के लिए सुखद अनुभव होता। असल में तो विद्यालयों में पढ़ना बच्चों के लिए एक कष्टप्रद प्रक्रिया बन गई है। जहाँ साल-दर-साल एक अर्थहीन, यांत्रिक एवं उबाऊ प्रक्रिया से गुज़रने के बाद भी अधिकांश बच्चे समझकर पढ़ने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं।

परंपरागत समझ हमें यह बताती है कि पढ़ना और लिखना दो भिन्न कौशल हैं। इसमें यह विचार शामिल है कि पढ़ना ग्राही कौशल है और लिखना उत्पादी कौशल है तथा पढ़ने एवं लिखने का क्रमबद्ध तरीके से विकास होता है। पढ़ने एवं लिखने की दोनों ही प्रक्रियाओं में कई ऐसी समानताएँ हैं, जो एक-दूसरे की पूरक हैं। पढ़ते समय पाठक अर्थ निर्मित करते चलता है, इसी प्रकार लिखते समय भी लिखने वाला अर्थ निर्माण करते चलता है। पढ़ने के क्रम में हम कई बार अपने अर्थ को संशोधित करते हैं, उसे दुबारा पढ़ने का प्रयास करते हैं। इसी तरह लिखते समय हम बहुत बार अपने लिखे हुए को संशोधित करते हैं। पढ़ने एवं लिखने की दोनों ही प्रक्रियाओं के अंत में हम एक अंतिम अर्थ का निर्माण करते हैं।

पढ़ना केवल लिपि या लिपिबद्ध भाषा को भेदना (Decoding) मात्र नहीं है, बल्कि छपी हुई सामग्री से कई स्तरों पर और उसके कई पहलुओं से अंत:क्रिया करना भी है, जिससे बच्चा पढ़ने के अनुभव से अपने लिए अर्थ निर्मित कर सके। पढ़ने के लिए आवश्यक है— लिपि (अक्षर ध्वनि) से परिचय,

भाषा एवं भाषा की वाक्य संरचना की समझ, विषय-वस्तु की समझ, अनुमान लगाने का कौशल (क्या हो रहा है? क्या घटित होगा?), पढ़ते समय पाठ एवं अपने स्कीम में सामंजस्य बिठाने का हुनर। इनके समग्र आलोक में बच्चा पढ़ी हुई सामग्री को समझ पाता है और अपने लिए अर्थ निर्मित करता है। जिन शब्दों को बच्चे अपने अनुभव से जानते हैं, उनके सामने आने पर एक पूरा बिंब बच्चे के दिमाग में बन जाता है, पढ़ने में ऐसी मानसिक स्थितियों का खास महत्व है। इस प्रकार, पढ़ना एकाकी प्रक्रिया नहीं है, इसमें कई प्रक्रियाएँ शामिल हैं। बच्चों के पढ़ने की शुरुआत किताब से कहानी पढ़ना, कविता गाते हुए पढ़ना, बच्चों द्वारा कविता बनाना, कहानी बनाना से की जा सकती है, इस प्रक्रिया में अध्यापक, बच्चों की कविता, गीत या कहानी को लिखने का काम कर सकते हैं, लिखते हुए पढ़ सकते हैं, इस प्रकार पठन सामग्री तैयार कर सकते हैं। चित्र पठन, अधूरी कहानी को पूर्ण करना आदि गतिविधियाँ शुरुआती दौर में उपयोगी हो सकती हैं। बच्चों के लिए पढ़ने का कोना, विद्यालय के बुलेटिन बोर्ड, सूचना पट्ट में सरल वाक्यों में लिखी गई सूचना, आज की बात (Morning message) में लिखे गए संदेश, दीवार पत्रिकाएँ, बाल समाचार-पत्र आदि लिखित सामग्री से सज्जित कक्षाएँ बच्चों में पठन उत्सुकता विकसित करने में बहुत अहम भूमिका निभाती हैं, अंतत: बच्चों के पठन कौशल के विकास में सहायक सिद्ध होती हैं।

पठन शुरू करने का कारगर उपाय

- कक्षा में छपी हुई सामग्री की बहुतायत हो। संकेतों, चार्ट, कार्य संबंधी सूचना आदि उसमें लगे हों ताकि विभिन्न अक्षरों की ध्वनियाँ सीखने के साथ-साथ लिखित संकेतों की पहचान भी कर सकें।
- कल्पनाशील निवेशों की ज़रूरत है, जिससे एक योग्य पाठक हाव-भाव से पढ़े आदि।
- विद्यार्थियों द्वारा बताए गए अनुभवों का लेखन और उसके द्वारा लिखित पाठ का वाचन।
- अतिरिक्त सामग्री का पठन– कहानियाँ, कविता आदि।
- प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थियों को इसका अवसर दिया जाना चाहिए कि वे अपने पाठ स्वयं तैयार करें और स्वयं द्वारा चुने हुए पाठों का कक्षा में योगदान करें।[14]

"पठन को भाषा शिक्षण का महत्वपूर्ण अवयव माना जाता है, स्कूली पाठ्यक्रम सूचनाओं एवं रटंत पाठों से इतने भरे होते हैं कि सिर्फ पढ़ने के लिए पढ़ने का आनंद कहीं दूर छूट जाता है। पढ़ने की संस्कृति के विकास के क्रम में वैयक्तिक पठन को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है और शिक्षकों को इस संस्कृति का हिस्सा बनकर स्वयं उदाहरण पेश करना चाहिए"।[15]

लिखना मनो-शारीरिक समन्वय का मामला है। कलम को एक विशेष तरीके से पकड़कर किसी वर्ण की आकृति को हूबहू उतारना बच्चे के लिए एक कष्टपूर्ण प्रक्रिया बन जाती है। ऐसा नहीं है कि बच्चा

कलम/पेंसिल से कोई रिश्ता नहीं रखना चाहता, वह तो दीवारों पर, ज़मीन पर, कागज़ पर अपनी समझ के अनुसार कुछ न कुछ बनाता रहता है, उसके बारे में बताता है, बनाने में आनंद का अनुभव भी करता है। "बच्चों की आड़ी-तिरछी लकीरें पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया का एक बेहद ज़रूरी हिस्सा है। अगर हम इन आड़ी-तिरछी लकीरों को नहीं सराहेंगे तो बच्चे पढ़ने लिखने की यांत्रिकता में ही उलझकर रह जाएँगे।"[16] ''हमारे विद्यालयों में बच्चों को लिखना एक यांत्रिक कौशल की तरह से सिखाया जाता है। शुरुआत में ही अक्षरों/वर्णों की आकृतियों को दर्जनों बार नकल करने के उपक्रम में बच्चे का बहुत सारा समय निकल जाता है और इस अवधि में लिखना सीखने का कोई भी उद्देश्य बच्चे की समझ में नहीं आता है।''[17] अब यदि इस स्थिति से उबरना चाहते हैं तो बच्चे को यह समझाना होगा कि लिखना बातचीत का विस्तार ही है, अर्मूत प्रतीकों के ज़रिये अपनी बात कहना ही लिखना है। आरंभिक वर्षों में लिखने की क्षमता का विकास बच्चे की बोलने, सुनने एवं पढ़ने की क्षमता की संगति में होना चाहिए।

शिक्षकों का ज़ोर इस बात पर होता है कि बच्चे सही तरीके से लिखें। लिखने के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता। ठीक वैसे ही जैसे समय से पहले सही उच्चारण का बोझ बच्चे के खुलकर अपनी बोली में बात करने की क्षमता को कुंठित करता है, उसी तरह मशीनी रूप से शुद्ध लिखने की माँग विचारों को अभिव्यक्त करने में बाधा बनती है।

शुरुआत में लेखन कौशल के विकास के लिए ड्राइंग, रंगीन चित्र बनाने के अवसर देना उपयुक्त होगा। वर्ण में कोई अर्थ नहीं होता, केवल ध्वनि होती है और इस निरपेक्ष ध्वनियों का बच्चे के लिए कोई विशेष अर्थ नहीं होता। वर्ण लिखना सिखाने के लिए भी किसी एक वर्ण से शुरू होने वाले शब्दों की सूची में से शुरुआती वर्ण को पहचानकर इसकी ध्वनि को समझने में बच्चे को मदद मिल सकेगी। इसे एक उदाहरण से स्पष्ट करना ज़रूरी है। 'क' वर्ण से शुरू होने वाले शब्दों की एक सूची, जैसे—कबूतर, कलम, कमल, कठिन, कहानी, कविता, कसरत, कद्दू, ककड़ी आदि-आदि प्रस्तुत करके इनको बार-बार दोहराने से बच्चों को क वर्ण के उच्चारण का एवं इसमें निहित ध्वनि का अनुभव मिलेगा, कुछ अभ्यास के बाद बच्चा शुरू के वर्ण को पहचानना सीख लेगा, इसके बाद 'क' वर्ण को लिखने में बच्चे को आसानी होगी। यहाँ पर ध्यान में रखना होगा कि शब्दों का चयन बच्चे के परिचित परिवेश से किया जाए तो शब्द बच्चे के लिए अर्थपूर्ण होंगे, तब लिखना भी उसके लिए मज़ेदार अनुभव हो जाएगा। इस प्रकार, जब अध्यापक शब्द एवं अर्थों के बीच कई मज़बूत पुल बना ले तो वर्णमाला का परिचय बच्चों के लिए बहुत उपयोगी हो सकता है। लिखने की शुरुआत के बाद शब्दों को तीन-चार

तरीके से लिखकर सही तरीका पहचानने के लिए बच्चों को प्रेरित करने से बच्चे शब्दों को लिखने में रुचि लेने लगेंगे। अब लिखने के अगले क्रम में जाया जा सकता है। इससे पहले बच्चों में यह समझ पुख्ता करनी होगी कि लिखते समय हमारे मन में एक निश्चित व्यक्ति होना चाहिए, जिसके लिए हम लिखना चाहते हैं और दूसरा लिखने का हमारे पास कोई निश्चित उद्देश्य भी होना चाहिए। लिखना एक तरह से लिखित बातचीत है, इसलिए यह जानना बहुत ज़रूरी है कि किससे बात करनी है? कैसे बात करनी है? यह लिखना सीखने के लिए बहुत उपयोगी साबित होगा। इस बारे में पक्की समझ हो जाने पर अधूरी कहानी को पूरा करना, कविता को आगे बढ़ाना, कहानी लिखना, कविता लिखना, पत्र लिखना, अवलोकन अनुभवों को लिखना, किसी देखे हुए मेले, उत्सव के बारे में लिखना जैसे उत्तरोत्तर उच्च लेखन कौशलों की ओर बढ़ा जा सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखन उद्देश्यपूर्ण हो, बच्चे के लिए अर्थपूर्ण हो, मात्र यांत्रिक प्रक्रिया से बच्चों में ऊब, तनाव एवं चिंता पैदा न करें।

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के शिक्षणशास्त्र के नज़रिए में मूलभूत बदलाव (इस आलेख के शुरुआती हिस्से में रेखाचित्र के माध्यम से इसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।) हेतु अध्यापक की क्षमताओं का विकास करने की आवश्यकता है। इसके लिए अध्यापक के भाषा शिक्षण व्यवहार हेतु आवश्यक ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों को संबोधित करना होगा। इसमें ज्ञान पक्ष के अंर्तगत, बच्चे के संदर्भ में भाषा क्या है? भाषा सीखने के उद्देश्य क्या हैं? इसके लिए उपयुक्त शिक्षणशास्त्र जैसे मुद्दों पर सैद्धांतिक समझ का विकास करना होगा। कौशल के अंतर्गत भाषा संबंधी कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना) के विकास हेतु उपयुक्त शिक्षण विधियों, गतिविधियों के नियोजन एवं क्रियान्वयन क्षमता का विकास, बहुभाषिकता को एक समृद्ध संसाधन के रूप में उपयोग में लाने का कौशल विकसित करना होगा। मूल्य विकास के लिए बच्चे की भाषा-बोली के प्रति संवेदनशीलता, बच्चे की भाषायी कौशल संबंधी ज़रूरतों को संबोधित करने की इच्छाशक्ति को बढ़ाने के प्रयास करने होंगे। भाषा की पाठ्यपुस्तक के पाठों को भाषायी कौशलों के आलोक में देखने का नज़रिया विकसित करना होगा। अध्यापक में यह अंर्तदृष्टि विकसित होने पर, अध्यापक पाठ्यपुस्तक से बाहर निकलने का साहस जुटा सकेंगे।

वस्तुत: भाषा के नाम पर अध्यापक कोई एकदम नयी चीज़ नहीं सिखा सकता है, वह ऐसी परिस्थितियाँ सृजित कर सकता है, जिसमें बच्चे पहले से सीखे हुए भाषायी कौशलों के द्वारा सुनने व बोलने का विकास कर सकें, नये कौशलों, जैसे— पढ़ना एवं लिखना सीख सकें। भाषा के दो शुरुआती कौशल, बोलना एवं सुनने के विकास के लिए बच्चों में अवलोकन क्षमता का विकास करके, बच्चों के पढ़ने एवं लिखने के कौशलों की प्रगति का सतत

आकलन एवं बच्चों को एकदम सही समय पर फ़ीडबैक देकर अध्यापक भाषा सीखने हेतु उपयुक्त वातावरण सृजित कर सकते हैं।

प्राथमिक शिक्षा के बाद आने वाले वर्षों की शिक्षा का बहाना लेकर बच्चे की आज़ादी एवं सहजता पर प्रतिबंध लगाना उचित नहीं है। ऐसे प्रतिबंध मुखर होकर अपनी बात कहने एवं लिखने से बच्चों को रोकेंगे। हमारे सामाजिक परिवेश में बच्चों पर बहुत सारी बंदिशें पहले से ही हैं, विशेषकर लड़कियों पर। ये प्रतिबंध भाषा शिक्षण ही नहीं समूची शिक्षा के उद्देश्य को कुंद कर देंगे। भाषा शिक्षण के तौर-तरीकों में बदलाव से उबरने की उम्मीद ज़रूर की जा सकती है।

टिपण्णी

[1]यहाँ बच्चे की घर/परिवेश की भाषा के लिए भाषा-बोली शब्दावली को व्यवहृत किया गया है। उत्तराखंड में कुमाउंनी सहित कई बोलियाँ एवं उप-बोलियाँ हैं, इन बोलियों एवं उप-बालियों को भाषा मानने में कतिपय भाषाविदों को आपत्ति रही है कि इनका कोई विधिसम्मत व्याकरण नहीं है, अत: इसे बोली मानते हैं। यद्यपि कुछ भाषाविद् इनको भाषा के समकक्ष मानते हैं। यही परिदृश्य भारत में अन्य क्षेत्रों के बारे में भी समीचीन है।

[2]राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005*. प्रथम संस्करण. प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016. पृष्ठ 43.

[3]होल्ट, ज़ॉन. 1993. *बच्चे असफ़ल कैसे होते हैं*. हिन्दी अनुवाद— पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा. एकलव्य प्रकाशन. पृष्ठ 251.

[4]राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005*. प्रथम संस्करण. प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्द मार्ग. नयी दिल्ली 110016. पृष्ठ 42.

[5]____. वही ____. पृष्ठ 41.

[6]____. वही ____. पृष्ठ 2.

[7]कुमार, कृष्ण. *बच्चे की भाषा और अध्यापक — एक निर्देशिका*. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. पृष्ठ 1.

[8]राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005*. प्रथम संस्करण. प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016. पृष्ठ 41.

[9]चॉम्स्की, एन. 1957. *सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स*. दी हेग— मौटेन कं.. चॉम्स्की, एन. 1959. *रिव्यू ऑफ़ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर*. लैंग्वेजिस 35.1.26-58. चॉम्स्की, एन. 1972. *लैंग्वेज एंड माइंड*. न्यूयार्क — हारकोर्ट ब्रास जोवानोविच. चॉम्स्की, एन. 1996. *पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्ट्स — रिफ़्लेक्शन ऑन ह्यूमन नेचर एंड द सोशल ऑर्डर*. दिल्ली — माध्यम बुक्स. चॉम्स्की, एन. 1965. *आस्पेक्ट्स ऑफ़ द थ्योरी ऑफ़ सिनटेक्स*. कैंब्रिज: एम. आई. टी. पेरिस. चॉम्स्की, एन. 1986, *नॉलेज ऑफ़ लैंग्वेज*. न्यूयार्क. चॉम्स्की, एन. 1988. *लैंग्वेज एंड प्रॉब्लम्स ऑफ़ नॉलेज*. कैंब्रिज, मास — एम. आई. टी.।

[10]जूलिया वेबर गॉर्डन. *मेरी ग्रामीण शाला की डायरी*. अनुवादक—पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा. एकलव्य. पृष्ठ 250.

[11]रस्तोगी, कृष्ण गोपाल. 1997. *भाषा संप्राप्ति, निदान और उपचार*. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016. पृष्ठ 32.

[12]राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005*. प्रथम संस्करण. प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016. पृष्ठ 41.

[13]____. वही ____. पृष्ठ 46.

[14]____. वही ____. पृष्ठ 47.

[15]राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. 2005. *लिखने की शुरुआत—एक संवाद*. श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016. पृष्ठ 6.

[16]कुमार, कृष्ण. 1996. *बच्चे की भाषा और अध्यापक– एक निर्देशिका*. प्रथम संस्करण. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. पृष्ठ 49.

[17]राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005*. प्रथम संस्करण. प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016. पृष्ठ 48.